P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 **SHRINKHALA :** VOL-II * ISSUE-VI February-2015
E: ISSN NO.: 2349-980X

हिन्दी दलित कविता में सामाजिक चेतना

करतार सिंह
सह आचार्य,
हिन्दी विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय,
जयपुर

देवी प्रसाद
व्याख्याता,
हिन्दी विभाग,
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
नीमकाथाना

सारांश

आधुनिक काव्य–संसार में 'दलित कविता' का अपना मुकाम और महत्त्व है। 'दलित कविता' बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर के दर्शन को आधार बनाकर चली है। इसलिए इस कविता का ध्येय एक ऐसे समतावादी समाज की स्थापना करना है, जिसमें सभी मनुष्य समान हों, मानव–मानव में जाति, वर्ण, वर्ग आदि के आधार पर किसी प्रकार का कोई भेदभाव नहीं हो। दलित कवियों ने समाज में व्याप्त विभिन्न बुराइयों को समाज के समक्ष रखकर समाज को दलितों और उपेक्षितों के दुख–दर्द और समस्याओं से अवगत करवाना चाहा है। 'दलित कविता' दलित समाज के दुख–दर्द का ही बयान नहीं करती वरन् दलितों में क्रांति–चेतना का प्रसार कर उन्हें उनके हक और अधिकार हासिल करने के लिए प्रेरित भी करती है। प्रस्तुत शोध–पत्र के माध्यम से हमारा प्रयास 'दलित कविता' में निहित समाज–चेतना का पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करना है।

मुख्य शब्द : अम्बेडकर–दर्शन, समतावादी समाज, बचवले (बचा लिया), दुरजोधना (दुर्योधन), पै धै के (के ऊपर रखकर) पथरा (पर्वत) उठवले (उठा लिया) डेरइले (डरते हो) भोगत बानी (भोगना पड़ता है) छोरत (छोड़ना), कहंवा सुतल बाटे सुनत न बाटे अब (कहते नहीं बनता सुनते नहीं बनता), दुइगो (दो), रूपमवा (रुपया), दरमहा (दिहाड़ी), सखसेत (सुख हेतु) सहेबे से (साहब से, मालिक से, ईश्वर से) सुनाइबि (सुनाएं) भगवनओं (भगवान) कबले (कब तक) कलेसवा (कष्ट) जातिवाद, अस्पृश्यता, मनुस्मृति।

परिचय

साहित्य मानव को सच्चे अर्थों में मानव बनाने का काम करता है। साहित्य, संगीत और कला से विहीन मनुष्य का पशुतुल्य माना गया है, क्योंकि वह साहित्य ही है जो मनुष्य को न केवल मानव, अपितु पशु–पक्षियों और सृष्टि के प्रत्येक प्राणी के सुख–दुख से उसका साक्षात्कार करवाकर उसे संवेदनशील बनाता है। कविता मानवीय संवेदनाओं को अभिव्यक्त करने का सर्वश्रेष्ठ माध्यम है। कविता सच्चे अर्थों में मनुष्यत्व की अभिव्यक्ति है। कविता कभी मानव–जीवन में आने वाले दुःखों और समस्याओं को उजागर कर मानव को संवेदनशील बनाती है, तो कभी खुशी के पलों का चित्रण कर मानव–जीवन को रस से सराबोर करती है। इसी के साथ कविता मनुष्य के जीवन में व्याप्त दुःखों को दूर करने के लिए मानव–मन में आशा एवं विश्वास का संचार करती है।

हिन्दी साहित्येतिहास में आदिकालीन कविता ने मनुष्य में ओजस्व का संचार किया, तो भक्तिकालीन कविता ने मानव को भक्ति–रस में निमग्न कर दिया। इसी प्रकार रीतिकालीन कविता ने मानव–मन में छिपी श्रृंगारिक भावनाओं का चित्रण किया, तो आधुनिक कविता ने मनुष्य की विभिन्न संवेदनात्मक अनुभूतियों का उद्घाटन किया है। आधुनिक कालीन कविता को 'छायावादी कविता', 'प्रगतिवादी कविता', 'प्रयोगवादी कविता', 'साठोतरी कविता', 'नई कविता', 'अकविता', 'आधुनिक कविता' आदि अनेक शीर्षकों–उपशीर्षकों में विभाजित किया गया है। आजकल 'दलित विमर्श' और 'स्त्री विमर्श' की चर्चा चतुर्दिक सुनाई पड़ रही है।

कविता का प्रमुख दायित्व मानवीय संवेदनाओं की अभिव्यक्ति है। जो कविता मानव को संवेदनशील बनाए, उसे अपने व समाज में बदलाव करने के लिए प्रेरित करे, जो भी अहितकारी है, उससे संघर्ष करने एवं उसे बदलने की प्रेरणा दे, समाज में पूर्ण सामाजिकता के साथ रहने की शिक्षा दे, वही सच्ची कविता है। 'दलित कविता' इन सभी लक्ष्यों को आत्मसात किये हुए है। इसलिए दलित कविता सच्चे अर्थों में मानवता की कविता है। दलित कवि और चिंतक ओमप्रकाश वाल्मीकि दलित कविता के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं, ''मेरा मानना है कि कविता मात्र आनन्द, रस, मनोरंजन के लिए नहीं होती।

कविता हमें मनुष्यता के निकट ले जाती है और मन में आशा, परिवर्तन के लिए गहरा विश्वास जगाती है। मानवीय दुर्बलताओं के प्रति सचेत करती है। इसलिए कहा भी जाता है कि कविता में संवेदनात्मक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति ज्यादा सशक्त होती है। इन सन्दर्भो में दलित कविता की भावभूमि अधिक संवेदनशील और ज्यादा लोकतांत्रिक है।''[1]

'हिन्दी दलित कविता' का प्रारम्भ 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित 'हीरा डोम' की कविता 'अछूत की शिकायत' से माना जाता है। इस कविता में कवि ने ईश्वर से अपनी दयनीय स्थिति को लेकर शिकायत की है। कवि ने बहुत ही मार्मिकता के साथ अपनी वेदना को प्रकट किया है। कवि की यह वेदना तो है ही कि वह दीन है, दलित है, अछूत है, परन्तु इससे भी अधिक पीड़ा है, ईश्वर द्वारा उसकी अनदेखी को लेकर। कवि का मानना है कि ईश्वर सबका उद्धार करता है, तो गरीबों का क्यों नहीं। कवि लिखता है : –

''खंभवा के फारि प्रह्लाद के बचवले जा
ग्राह के मुख से गजराज के बचवले,
धाती दुरजोधना कै भइआ छोरत रहे
परगट होके तहाँ कपड़ा बढवले।
मरले रवनवाँ के पलले भमिखना के,
कानी अंगुरी पै धै के पथरा उठवले।
कहंवा सुतल बाटे सुनत न बाटे अब,
डोम जानि हमही के छुए से डेरइले।।''[2]

भोजपुरी भाषा में लिखी यह कविता दलितों की पीड़ा एवं वेदना की मार्मिक अभिव्यक्ति है। कवि दलितों–शोषितों की पीड़ा ईश्वर के समक्ष रखता है और ईश्वर से सवाल करता है कि आपने खंभा फाड़कर प्रह्लाद को बचाया, मगरमच्छ से मुँह से गजराज को बचाया, द्रोपदी की लाज रखने के लिए चीर को बढाया, परन्तु हमारे दुःखों को जानकर भी आप हमारी रक्षा नहीं करते। क्या आप भी हमें अछूत जानकर और अन्य लोगों की तरह छूने से डरते हो ? यही नहीं कवि की पीड़ा यह भी है, कि हम रात–दिन मेहनत करके, खेतों में खून–पसीना एक करके कमाते हैं, उसके बावजूद दुःखी हैं और हमारी समस्याओं को भगवान भी नहीं देखते हैं:–

''हमनी के रात–दिन दुखवा भोगत बानी,
हमनी के सहेबे से विनती सुनाइबि।
हमनी के दुख भगवनओं न देखता जे,
हमनी के कबले कलेसवा उठाइबि।
हमनी के राति दिन मेहनत करीले जा,
दुइगो रूपमवा दरमहा में पाइबि।
ठाकुरे के सुखसेत घर में सुतल बानी,
हमनी के जोति–जोति खेतिया कमाइबि।''[3]

इस प्रकार दलित कवि समाज में व्याप्त विडंबनाओं को उजागर करता है। दलित जागरण के प्रमुख हस्ताक्षर स्वामी अछूतानन्द 'हरिहर' ने अपनी कविताओं के माध्यम से समाज को नवीन संदेश देना चाहा है। इन्होंने समाज में व्याप्त विभिन्न बुराइयों, कूरीतियों और अव्यवस्थाओं को समाज के सम्मुख रखा है। कवि मानव–मानव में छूआछूत के कारण बढ़ती दूरियों को रेखांकित कर अपनी पीड़ा को उजागर करता है। कवि की पीड़ा है कि एक तरफ सभ्य समझा जाने वाला समाज 'दलित समाज' को 'हरिजन' (यानी ईश्वर की संतान) कहता है, तो दूसरी तरफ उसी ईश्वर से वह उसे अलग करता है। उसे अछूत समझकर उसके लिए पूजा स्थलों के द्वार तक बन्द रखता है। कवि के अनुसार 'हरिजन' दलितों को दिया गया केवल एक शब्द है, छूआछूत का एक प्रतीक है, इसके अतिरिक्त कुछ नहीं। समाज उसी हरिजन (इश्वर की संतान) के साथ इतना भेदभाव करता है, जो मानवता को शर्मसार करने वाला है। कवि अपनी वेदना को प्रकट करते हुए कहता है, कि:–

''मैं अछूत हूँ, छूत न मुझमें फिर क्यों जग ठुकराता है।
छूने में भी पाप मानता छाया से धबराता है।।
मुझे देख नाक सिकोड़ता दूर हटा वह जाता है।
हरिजन भी कहता है मुझको 'हरि' से विलग कराता है।।''[4]

दलित कविता समाज को केन्द्र में रखकर चलती है। उसका अपना सामाजिक दर्शन है, जो समाज में व्याप्त रूढ़ परम्पराओं का खण्डन करता है। दलित कवि वर्ण–व्यवस्था और अस्पृश्यता का तीव्र विरोध करता है। वह समतावादी समाज की स्थापना करना चाहता है। दलित कविता मानव में किसी तरह का भेद नहीं करती, उसकी दृष्टि में सभी मनुष्य एक समान हैं। समतावादी समाज का नारा देने वाले समाज में आज भी दलितों के साथ अनेक स्तरों पर भेदभाव किया जाता है, डॉ. देवेन्द्र दीपक लिखते हैं:–

''हम आदमी हैं तो सिर्फ इसलिए
कि हम आदमी जैसे दिखते हैं
आदमी के लिए जो नहीं था काम्य
हमने घृणा का वह
अतिरेक देखा है।
व्यवहार में व्यतिरेक देखा है।''[5]

दलित कवियों ने समाज की क्रूर वास्तविकताओं को उजागर किया है। इन्होंने इन स्थितियों का चित्रण न तो अपनी काव्य–रचना को प्रभावशाली बनाने के लिए किया है और न ही झूठी सहानुभूति बटोरने के लिए, अपितु जो कुछ इन्होंने देखा और अनुभव किया, उस स्वानुभूत सत्य को समाज के समक्ष प्रस्तुत किया है। दलित कवि द्वारा ऐसा करने का एकमात्र उद्देश्य समाज में मानवीय संवेदनाओं का संचार करना है। डॉ. माता प्रसाद दलित साहित्य को दलितों के लिए हथियार मानते हुए लिखते हैं, ''दलित साहित्य जहाँ एक ओर समाज की संवेदनाओं को झकझोरता है, वहीं दलितों के स्वाभिमान की चेतना को भी जागृत करता है। विषमताओं का जो भी संरक्षण करता है यह उनका पुरजोर विरोध करता है। दलितों के अधिकारों की लड़ाई कोई दूसरा नहीं लड़ सकता, इसे दलितों को स्वयं ही लड़ना है। दलित साहित्य दलितों के लिए संघर्ष करने का एक बहुत बड़ा हथियार है।''[6]

'दलित कविता' का उद्देश्य समाज को अन्याय, अत्याचार, शोषण के खिलाफ एकजुट कर शोषण और असमानता को समाप्त करना है। दलित कविता का ध्येय एक ऐसे समाज की स्थापना करना है, जिसमें सब समान हों, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और धार्मिक स्तर पर कोई भेदभाव नहीं हो। झूठी परम्पराएँ एवं मान्यताएँ न हो, वैज्ञानिकता हो, मानवता का पूरी तरह सम्मान हो और जहाँ मनुष्य को बिना किसी भेदभाव के सभी मानवीय अधिकार प्राप्त हों। परन्तु हकीकत तो यह है कि ऐसा समाज आज भी एक सपना ही बना हुआ है, इसलिए दलित कवि सवाल करता हैः–

''तुम कोठी बंगलों में रहते
मैं रहता झापड़ पट्टी में
तुम ए.सी. कूलर में सोते
मैं तपता श्रम की भट्टी में
तुम दूध–मलाई में नहाओ
मैं रोटी को मोहताज रहूँ
तुम मालिक मैं नौकर ठहरा
फिर समता का संसार कहाँ?''[7]

दलितों की समस्या यह है कि वे न तो समता और भाईचारे का अनुभव कर पाते हैं और न ही स्वतंत्रता का उपभोग। हर जगह से फटकार और दुत्कार खाने वाले दलित प्यार और अपनेपन के लिए तरसते हैं। उनके जीवन की सबसे बड़ी त्रासदी यही है, कि उन्हें अपने ही देश में परायेपन और अजनबीपन के अहसास के साथ जीना पड़ता है। जिस देश में उनको मनुष्य न मानकर उनक साथ पशवत व्यवहार किया जाए, उन्हें अस्पृश्य समझा जाए, उन्हें भूखा, नंगा रहने को विवश किया जाए, उन पर अनेक तरह की वर्जनाएं थोंपी जाएं, उस देश को वे अपना कैसे कह सकते हैं। यह सवाल किसी भी न्यायप्रिय और संवेदनशील व्यक्ति को सोचने के लिए विवश कर सकता ह। जहाँ हर कदम पर दलितों को अपमान और जिल्लत का जहर पीना पड़ता हो, उस देश के समाज और संस्कृति पर उसे गर्व नहीं है। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने इस सामाजिक असमानता को अभिव्यक्त करते हुए लिखा हैः–

''चाहो तो मुझे भी मार डालो
वैसे ही जैसे मार डाला एक प्यासे को
जिसने कोशिश की थी
एक अंजुली जल पीने की
उस तालाब का पानी
जिसे पी सकते हैं कुत्ते–बिल्ली
गाय–भैंसे नहीं पी सकता एक दलित
दलित होना अपराध है उनके लिये
जिन्हें गर्व है संस्कृति पर
वह उतना ही बड़ा सच है
जितना उसे नकराते हैं
एक साजिश है जो तब्दील हो रही है
स्याह रंग में जिसे अंधेरा कहकर
आँख मूँद लेना काफी नहीं है!''[8]

दलित कवियों ने समाज में व्याप्त जाति–व्यवस्था को समाज के विकास में सबसे बड़ी बाधा माना है। इन कवियों का आक्रोश केवल शोषणकर्त्ताओं के प्रति ही नहीं है वरन् उन लोगों के प्रति भी है जो जाति–व्यवस्था और अस्पृश्यता की समाप्ति का झूठा नारा देते हैं। कवि ऐसे लोगों को झूठा और मक्कार कहता है। कवि का मानना है कि जब तक समाज में स्मृतियाँ, वेद, रामायण जैसे ग्रंथ रहेंगे, तब तक अस्पृश्यता और वर्ण व्यवस्था रहेगी और इन व्यवस्थाओं के रहते हुए समाज में सामाजिक समानता की स्थापना नहीं हो सकती। कवि कहता हैः–

''झूठे हैं वे लोग, जो कहते हैं
देश में जातिवाद आखिरी साँसें ले रहा है
धोखेबाज हैं वे लोग जो कहते हैं
अस्पृश्यता का जनाजा निकल चुका है
मक्कार हैं वे लोग जो कहते हैं
वर्ण–व्यवस्था अप्रसांगिक हो चुकी है
जब तक स्मृतियां रहेंगी रामायण,
गीता और वेद रहेंगे
तब तक वर्ण शुचिता रहेगी
अस्पृश्यता रहेगी, जातिवाद रहेगा।''[9]

ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'इतिहास', 'किष्किन्ध' और 'मैं भयभीत हूँ' आदि कविताओं में दलित मानवता की चीख–पुकार और रिसते दर्द को देखा जा सकता है। दलितों को सदियों से पुस्तकों और ज्ञान से दूर रखने का प्रयास हुआ है। 'मनुस्मृति' जैसे ग्रंथों के माध्यम से तो घोर अतार्किक रूप से दलितों को अध्ययन–अध्यापन के लिए सर्वथा अयोग्य सिद्ध करने का प्रयास किया गया है। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने इसी प्रकार की निकृष्ट मानसिकता और आधुनिक समाज की हेय सोच तथा क्षूद्र विचारों को उजागर करते हुए, इस बात को रेखांकित किया है, कि स्वर्ण और सुसंस्कृत माना जाने वाला समाज दलितों को शैक्षिक तथा ज्ञानार्जन के मोर्चे पर किस तरह परे धकेलना चाहता हैः–

''वे भयभोत हैं इतने कि देखते ही कोई किताब
मेरे हाथों में हो जाते हैं चौकन्ने
बजने लगता है खतरे का सायरन
उनके मस्तिष्क और सीने में
करने लगते हैं ऐलान गोलबन्द होने का
वे भयभीत हैं इतने कि समझने लगते हैं
आँधी मेरे उच्छवासों को
जो बढ़ रहे हैं लगातार
उनके बन्द किले की ओर
जहाँ सुरक्षित हैं वे फिर भी भयभीत हैं।''[10]

दलित कविता में सामाजिक त्रासदी को उकेरा गया है। शरण कुमार लिम्बाले की 'दुपहर में अंधेरा', 'भूख', 'परिस्थिति', 'क्यों', 'भ्रम मत पालो', 'मनुवादी', 'हम इस देश के वारिस नहीं है' जैसी कविताएं निम्न माने जाने वाले समाज के अधूरे सपनों, उनके दर्द, पीड़ा और व्यथा का बयान करती हैं। यशवंत लोकनाथ की कविताएं भी इसी तरह के हालात को दर्शाती हैं। दलित कवि सभी

कामों में बराबरी की बात करता है, बिहारी लाल 'हरित' एक कविता में लिखते हैंः–

''करके खुदी को दूर खुद मजबूत बनके देख।
दो चार दिन के वास्ते अछूत बन के देख।
सिर पर रख जरा टोकरा मैले का टपकता,
गन्दगी में बढ जरा मल मूत बन के देख।।''[11]

दलित–समस्या विश्व के उन लोगों से जुड़ी हुई है, जिनके साथ जातीय–आधार पर या रंग–भेद के कारण भद–भाव किया जाता है। हमारे देश में जाति को जिस तरह से धर्म और संस्कृति से जोड़ दिया गया है, वैसा विश्व में कहीं नहीं है। बाबूराव बागुल 'दलित साहित्य' की सामाजिक प्रासंगिकता को रेखांकित करते हुए लिखते हैं, ''दलित साहित्य वह लेखन है जो वर्ण–व्यवस्था के विरोध में और उसके विपरीत मूल्यों के लिए संघर्षरत मनुष्य से प्रतिबद्ध है। वर्ण–व्यवस्था अर्थात् द्वेष, शत्रुता, मत्सर, तिरस्कार की युद्ध भावना। इसके विपरीत मूल्य अर्थात प्रेम बन्धुता, समता, भ्रातृत्व भाव पूर्ण शांति और समृद्धि।''[12] शरण कुमार लिम्बाले के अनुसार दलितों द्वारा हजारों वर्षों तक भोगी गई पीड़ा का सामाजिक स्वरूप ही दलित साहित्य है। दलितों की वेदना को ही दलित साहित्य की जन्मदात्री मानते हुए शरण कुमार लिम्बाले लिखते हैं, ''दलितों की वेदना ही दलित साहित्य की जन्मदात्री है। यह वेदना एक की नहीं, ना ही एक दिन की है। यह वेदना हजारों की है, हजारों वर्षों की है। इसलिए यह व्यक्त होते समय समूह स्वरूप में व्यक्त होती है। दलित साहित्य में एक 'मैं' की वेदना नहीं। वह पूरे बहिष्कृत समाज की वेदना है। इसलिए इस वेदना का स्वरूप सामाजिक बन गया है।''[13]

सामाजिक परिवर्तन के लिए समय के अनसार सुधारात्मक कार्य करना आवश्यक है। केवल 'समता दिवस' मनाने से समतावादी समाज की स्थापना नहीं हो सकती। यदि वास्तव में समतावादी समाज की स्थापना ही करनी है, तो सामाजिक–आधार बदलना होगा। वर्ण और वर्ग की विभाजन रेखाओं को समाप्त करना होगा। मानव मानव का जाति, धर्म, सम्प्रदाय, वर्ग, प्रान्त के आधार पर एक समझेगा तभी समतावादी समाज की स्थापना होगी। दलित कवि कुसुम वियोगी इस व्यवस्था के पिंजरे को तोड़ देना चाहते हैंः–

''अब तुम्हारी व्यवस्था के पिंजरे
तम्हें ही मुबारक अब तो
मैं बुनकर ही रहूँगा
सामाजिक पुनः संरचना की चादर
समता के धागों से।''[14]

हिन्दू धर्म में कर्म की प्रधानता को सबसे अधिक महत्व दिया गया है। धार्मिक मान्यता के अनुसार कोई भी कर्म निम्न नहीं है। सेवा–कार्य को उच्च स्थान प्रदान कर दलितों को तीनों वर्णों की सेवा का कार्य दिया गया परन्तु दलितों द्वारा किए जाने वाले सेवा–कार्यों को हीन समझा जाता है। इसलिए दलित व्यक्ति सभी कामों में बराबरी की मांग करता है। समत्वबोध दलित साहित्य का मूल स्वर है। सामाजिक समानता की स्थापना हेतु संघर्षरत दलित साहित्यकार गैरबराबरी की समूची व्यवस्था को ही परिवर्तित कर देना चाहता है। दलित कवि जयप्रकाश कर्दम शासन प्रशासन से लेकर मैला ढोने तथा जूती गांठने तक सभी कार्यों में समानता की मांग करते हैंः–

''अब हर क्षेत्र में होगी समान रूप से हिस्सेदारी
शासन–प्रशासन से लेकर/मैला ढ़ोने,जूता गाँठने
और झाड़ू लगाने तक के काम में भी।
बाँटनी होगी समानता।''[15]

कालीचरण स्नेही दलित कविता की सामाजिक प्रासंगिकता पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं, ''दलित साहित्य, मात्र साहित्य ही नहीं है, दलितों की अस्मिता का क्रांतिदर्शी आन्दोलन भी है। उनके अस्तित्व के भास्वर होने की उद्घोषणा भी इस साहित्य में है। साथ ही सामाजिक समरसता तथा खोई हुई मानवीय गरिमा को स्थापित करने का संकल्प भी दलित साहित्य में मौजूद हैं। दलित साहित्य, शब्दों का तिलिस्म या भाषिक घटना मात्र नहीं है, यह तो अनुभूतिजन्य संवेदना की चीत्कार, सदियों से पीड़ा का सुप्त हाहाकार, तिरष्कृत और बहिष्कृत जीवन की व्याख्या है। ऐसी व्याख्या, जिसे पुनः व्याख्यायित करने की आवश्यकता ही नहीं है। इस साहित्य में हमारे समाज का, हमारे अपने समय का, हमारी अपनी घुटन और पग–पग पर अपमान झेलती मानवता का आक्रोशपूर्ण संवेदना मूलक सहज शाब्दिक उच्छवास है।''[16]

दलित कविता में पीड़ा और विद्रोह प्रमुख स्वर बनकर सामने आया है। दलित कवि मानवता का समर्थक है। उसका सपना एक ऐसे समाज का निर्माण करना है, जिसमें किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं हो। समाज सभी प्रकार के अन्याय, अत्याचार, उत्पीड़न से मुक्त हो। 'दलित कविता' समाज में समन्वय स्थापित करने का संदेश देती है। ओम प्रकाश वाल्मीकि 'दलित साहित्य' को सामन्ती और ब्राह्मणवादी सोच का विरोध कर समतावादी समाज की स्थापना करने वाला स्वीकार करते हैं। वे लिखते हैं, ''दलित साहित्य मनुष्य की स्वतंत्रता का पक्षधर है। समता, बंधुता और शोषण विहीन समाज की स्थापना के लिए प्रतिबद्ध है। सामन्ती और ब्राह्मणवादी व्यवस्था को पुकारता है, उसका विरोध करता है। यथास्थिति की जगह बदलाव की प्रक्रिया को गतिशील करता है। मानवीय संवेदनाओं का प्रबल सर्मथक है। जनमानस को संघर्षशीलता उसके सरोकारों में पहले स्थान पर है।''[17] दलित कवि समाज को जोड़ना चाहता है। 'दलित कविता' उन स्थितियों का विरोध करती है, जिनके कारण मनुष्य को पशु से भी हीन समझा जाता है। वह समतावादी समाज की संरचना का संदेश देती है। दलित कविता की इस समतावादी सोच को उजागर करते हुए जयप्रकाश कर्दम लिखते हैंः–

''मैं विद्वेष नहीं/ सामंजस्य चाहता हूँ/बर्बरता और दमन का/प्रतिकार चाहता हूँ/ मैं जेठ की लू नहीं/ सावन की बयार चाहता हूँ / भेदभाव का पतझड़ नहीं/ बंधुता की बयार चाहता हूँ / मैं पशुता का जंगल नहीं,/मनुष्यता का संसार चाहता हूँ.....स्वीकार नहीं मुझे अब/ साँझ के सूरज सा ढलना/ मैं भोर के सूरज सा/ उदय होना चाहता हूँ/ अज्ञान के अंधेरों से

निकलना चाहता हूँ/ बहुत भटका हूँ/ असमानता और अन्याय की गलियों में मैं/ समता के राजपथ पर चलना चाहता हूँ।''[18]

सन्दर्भ सूची

1. ओम प्रकाश वाल्मीकि, 'सदियों का संताप', प. सं. 9
2. माता प्रसाद, 'हिन्दी काव्य में दलित काव्यधारा', पृ. सं. 314
3. वही, पृ. सं. 314
4. कालीचरण स्नेही, 'दलित विमर्श और हिन्दी दलित काव्य', पृ. सं. 32
5. डॉ. देवेन्द्र दीपक, चेतना के स्वर (संपादक डॉ. एन. सिंह) पृ. सं. 28
6. माता प्रसाद, 'हिन्दी काव्य में दलित काव्यधारा', पृ. सं. 19
7. जयप्रकाश कर्दम, 'गूंगा नहीं था मैं', पृ. सं. 46
8. ओमप्रकाश वाल्मीकि, ('वसुधा' 58, जुलाई–सितम्बर 2003, पृ. सं. 133)
9. जयप्रकाश कर्दम, 'गूंगा नहीं था मैं', पृ. सं. 74
10. ओमप्रकाश वाल्मीकि, ('कथादेष', मार्च 2005 पृ.सं. 68)
11. कंवल भारती, 'दलित निर्वाचित कविताएं', (भूमिका) पृ. सं. 17
12. बाबूराव बागुल, 'सारिका', मई 1975, पृ. सं. 76
13. डॉ. शरण कुमार लिम्बाले, 'दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र', पृ. सं. 43
14. डॉ. कुसुम वियोगी, 'टुकड़े–टुकड़े दंश', पृ. सं. 54
15. जयप्रकाश कर्दम, 'गूँगा नहीं था मैं', पृ. सं. 18
16. काली चरण 'स्नेही', 'दलित विमर्ष और हिन्दी दलित काव्य' (संपादकीय) पृ. सं. XXII
17. 'दलित दखल', संपादक– श्योराज सिंह 'बेचैन', रजत रानी 'मीनू', पृ. सं. 42
18. जयप्रकाश कर्दम, 'दलित साहित्य रचना और विचार' (संपादक– पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी) पृ. सं. 59